हिंदी काव्य में दलित चेतना

डॉ. सुधीर गणेशराव वाघ
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभागाध्यक्ष,
शिवाजी महाविद्यालय, हिंगोली (महाराष्ट्र)
भ्रमनध्वनि–9850203878

शोध सार–साहित्य और समाज के निकटवर्ती सम्बन्ध का मूल आधार व्यक्ति है। रचनाकार अपने समय का प्रतिनिधि होता है। उसको जैसी मानसिक खाद मिलती है, वैसी ही उसकी कृति होती है। आज वहीं साहित्य महत्वपुर्ण है जो वर्तमान तथा यथार्थ जीवन से जुडा है। वह वर्तमान जीवन की समस्याओं पर दृष्टिपात ही नहीं करता तो उन समस्याओं से उपर उठने का उपदेश भी प्रदान करता है।

मुख्य शब्द– दलित साहित्य स्वतंत्रता, बंधुता, न्याय, समानता के मूल्य, दलित संघर्ष।

साहित्य और समाज के निकटवर्ती सम्बन्ध का मूल आधार व्यक्ति है। कवि या लेखक अपने समय का प्रतिनिधी होता है। वह अपने समय के वायुमंडल में घुमते हुए विचारों को मुखरीत करता है। दलित साहित्यकरों की रचनाओं में उपन्यास, कहानी, कविता, अनुवाद, आत्मकथा तथा कई विशिष्ट लेख शामिल है। रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में दलितों के जीवन पर आधारित कथाओं को प्रस्तुत किया है। अपने साहित्य के माध्यम से दलितों के साथ हो रहे अन्याय, उनका शोषण दर्शाया है। नारी के साथ समाज में हो रहे अत्याचार एवम् कुप्रथाओं–अमानवीय व्यवहारों के बीच जूझाती, तडपती उनकी आहटों को भी दर्शाया है।

भारतीय समाज सदियों जाति–उपजातियों के जटिल व अनगिनत खेमों में विभाजित रहा है। हजारों सालों से ऐतिहासिक परिदृश्य में दलितों ने जो सामाजिक उत्पीड़न सहा है, विषमताएँ झेली है व भेदभाव ग्रस्त जीवन व्यतीत किया है, उन सबका चित्रण दलित साहित्यकारों ने अपने साहित्य में किया है।

चेतना का अर्थ है जागना, होश में आना, साझीदारी से काम लेना। समाज में चल रहीं अमानवियता के प्रति आवाज उठाना, विद्रोह करना, उसको अपने मानवोचित अधिकार एवं स्थिरता के लिए प्रेरित करना। साहित्य समाज का दर्पन है। साहित्य में कला को हमने सत्यम, शिवम् माना है, किन्तु हम इस सुत्र को तभी चरितार्थ कर पायेंगें जिसके साथ अन्याय

हो रहा है, जिसके साथ अमानवियता भरा व्यवहार हो रहा है। जब तक समता का संसार स्थापित नहीं होगा तब तक साहित्य में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की भावना करना मात्र कल्पना है।

दलित साहित्य स्वतंत्रता, बंधुता, न्याय, समानता के मूल्य लेकर मानवीय उत्क्रांति के लिए प्रतिबद्ध है। दलित साहित्य में केवल दलित ही नहीं बल्की समग्र मानवीय जीवन की पक्षधरता के सवाल उठाए गए। साहित्य और समाज के निकटवर्ती सम्बन्ध का मूल आधार व्यक्ति है । रचनाकार अपने समय का प्रतिनिधि होता है। उसको जैसी मानसिक खाद मिलती है, वैसी ही उसकी कृति होती है। आज वहीं साहित्य महत्वपुर्ण है जो वर्तमान तथा यथार्थ जीवन से जुडा है। वह वर्तमान जीवन की समस्याओं पर दृष्टिपात ही नहीं करता तो उन समस्याओं से उपर उठने का उपदेश भी प्रदान करता है।

दलित साहित्य में भाषिक,राष्ट्रीय दुराभिमान नही हैं। दलित साहित्य तो मनुष्य को सर्वोपरी मानता है। "दलित" शब्द आधुनिक काल के सुधारवादी आंदोलन की उपज है। आधुनिक काल में "दलित" शब्द का विशेष अर्थ प्राप्त हो रहा है। दलित शब्द को लेकर हिंदी साहित्य के विदवांनो में मतभेद है। गांधीजीने हरिजन, श्री भगाटे ने अपृष्य और डॉ.बाबासाहेब आंबेडकरने बहिष्कृत अछूत शब्द का प्रयोग किया है । प्राचीन साहित्य में शुद्र, अपर्ण, अतिशुद्र,अपवित्र अत्यंत आदि शब्द का प्रयोग किया गया है। दलित केवल हरिजन और नवबौध्द नहीं। गांव की सीमा के बाहर रहनेवाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहिन, खेत मजदूर, श्रमिक, कष्टकरी जनता और यायावर जातियाँ सभी के सभी दलित शब्द से व्याख्यायित होती है। दलित शब्द की व्याख्या केवल अछूत जाति का उल्लेख करना पर्याप्त नहीं होगा, इसमें सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछडे हुए लोगों का भी समावेश हुआ है।

भारतीय समाज वर्ग और वर्ण में बटा है। दलित संघर्ष प्राचीन समय से चला आ रहा है। दलितों का जीवन प्रचीन काल से साहित्य का विषय रहा है। दलित समाज का एक घटक होने के साथ साथ मानवीय जीवन का एक अयाम भी रहा हैं। हिंदी काव्य में सबसे पहले कबीर व लोकनायक तुलसी की वाणी ने दलित वर्ग की करुणा व वेदना को साहित्यिक रुप प्रदान किया गया है। कबीर ने ब्राम्हणों को ललकारा स्वयं को सर्वश्रेष्ठ माननेवाले ब्राम्हणों पर प्रहार करते हुए लिखा है।

"जो तू बामन–बामनी जाया तो आण बाण को काहे न आया।"[1]

कबीर ने जतिपातिका विरोध किया है। वे कहते है –

"जाँति पाति पूछे नहिं कोय हरि को भजे सो हरि का होई।" [2]

ने भी इस व्यवस्था पर प्रहार करते हुए कहा की बामन को मत पूजिए, जो हेा गुण हीन पूजिए चरण चण्डाल के जो हो ज्ञान प्रविण ।

हिंदी में पहले कमलेश्वर के संपादन मे 'सारिका' के मई 1975 के सामान्तर कहानी विशेषांक ने दलित चेतना से युक्त साहित्य का परिचय दिया। अपने संपादकिय में उन्होंने लिखा कि ''सोचने के लिये सवाल यह था लिया था कि मानव कल्याण की इतनी खूबसूरत पैरवी करने वाला देश इतने बड़े कल्याणकारी यातना शिविर में क्यों बदल गया है? भारतीय चिंतन और विचार धाराओं की मानव कल्याणकारी दृष्टि के विराट जलन के बावजूद या महादेश मानवीय मूल्यों की सत्ता पर बंजर क्यों हो गया है? क्या सिर्फ यह मान लिया जाए कि कुछ वर्गों ने इन विचार बीजों का रोपा नहीं जाने दिया है? स्पष्टतः इस बयान पर दलित पैंथर्स के विचारों पर का कोई असर दिखाई देता है। कमलेश्वर ने दलित साहित्य का पक्ष लेते हुए आगे लिखा था कि–''आज का समांतर और दलित साहित्य तमाम सौन्दर्यवादी मूल्यों की परवाह न करते हुए मनुष्य के औसत दुःख–सुख, आकांक्षाओं की बात करता है।'' इस तरह महीप सिंह द्वारा संपादित 'संचेतना' पत्रिका दिसंबर 1981 ने भी हिंदी में दलित साहित्य की जमीन तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आधुनिक युग में दलित, शोषित एवं पिडित समाज अपना विद्रोह अनेको माध्यमों से व्यक्त करने लगा। दलित आंदोलन पुरे द्वेष में गतिमान हो गया। हिंदी साहित्य में मराठी की तरह दलित वर्ग के लिए भले ही अलग मंच न हो किंतु आधुनिक काल में भारत युग से लेकर समसामायिक युग के साहित्य में दलित वर्ग अपने अपेक्षित रुप में यत्र तत्र मिलता है। साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद, निराला, नागार्जुन, रांगेय राघव, ने भी दलित पीडा को अपनी लेखनी का विषय बनाया। पर उसके लेखन में वह छटपटाहट नहीं है, जो दलित लेखकों की लेखनी में है, क्योंकि किसी दर्द को खुद सहना और अभिव्यक्त करना तथा दूसरे के दर्द से द्रवित होकर उसे व्यक्त करने में जमीन आसमान का फर्क होता है। रचनाकार कितना ही संवेदनशील हो किन्तु वह अधिक से अधिक दूसरे की शारीरिक यातना को ही समझ सकता है। मानसिक छल, अपमान, वेदना को समझाने के लिए शोषित के सामाजिक, मानसिक, सांस्कृतिक धरातल पर ही उतरना पड़ता है।

चातुवर्ण व्यवस्था का विरोध करते हुए कवि हरिऔध हरिजनों और दलितों की अवहेलना नहीं चाहते वे कहते है–

"नीचे से नीच क्यों न कोई है। है न उँचे टहल समय समय टलते।
पाँव जब दुख रहे हमारे हों हाथ तब क्यों उन्हें नही मलते।।"

रश्मिरथी में दिनकर जीने वर्णव्यवस्था पर आघात करते हुए लिखा है –

"जाति–जाति रहते, जिनकी पूँजी केवल पाखंड मैं क्या जानू जाति है।" [3]

ये मेरे भुजदंड मानवतावादी विचारधारा से प्रेरित होकर अनेक कवियों ने साम्यवाद का समर्थन किया है । विश्वप्रेम की भावना को साकार करने की कामना की है । श्रीधर पाठक ने दलितों की समस्याओं के विविध रुपो में प्रस्तुत किया है । रामनरेष त्रिपाठी ने ग्रामिण दलित वर्ग का चित्रण किया है । माखनलाल चतुर्वेदी ने दलित वर्ग को समानता के समकक्ष स्थान दिलाने के लिए भौतिक प्रगति आवष्यक मानी है । छायावादी कवियों में प्राचिन परंपराओ ंऔर वर्ण व्यवस्था के प्रति विद्रोह का स्वर ध्वनित हुआ है । सुमित्रानंदन पंत व कवि निराला ने जाँति पाँति का विरोध किया है। निराला की नये पत्ते व कुत्ता भौकने लगा कविता में किसान मजदूर भारतीय नारी नौकर व भिक्षुक का मर्मस्पर्श चित्र प्रस्तुत किया है । कवि पंत ने ऋणग्रस्त किसान का शोषण, ग्राम नारियाँ की दयनीय अवस्था का चित्र प्रस्तुत किया है ।

उत्तरी छायावादी काल में बच्चन, भगवती चरण वर्मा, नरेंद्र शर्मा की कविताओं में अस्पृष्यों के प्रति किये गये क्रुरता के व्यवहार का विद्रोह को प्रस्तुत किया है । अछूतों के प्रति दयाभाव का संकेत देते हुए भगवती चरण वर्मा लिखते है –

"पशुओं पर है दया, मनुष्यों पर है अत्याचार ।
व्यंग्य मात्र है और अतीत यह सब तेरा आचार ।
अरे ये इतने कोटि अछुत तुम्हारे वे कौडी के दास ।
दुर है छुने की ही बात पाप है आना इनका पास ।।"

प्रगतिवादी काव्यधारा को केंद्रबिंदू दलित वर्ग है । समाज में पूजीपति व सर्वहारा में निरंतर संघर्ष चलता है । संघर्षमयी जीवन व्यापन करने वाले भूखे, नंगे शोषित मानव कविता का विषय बनाये है । रांघेय राघव पूंजिपतियों पर काव्य करते हुए लिखते है –

"मै आज सच्चता के पुतले धन दिवानों सें पूछ रहा
यह क्या सूहर ही बना दिया हरिजन के बच्चों को तुमने। "

अस्पृष्य विरोधी आंदोलन ने इस काल में बहुत जोर पकडा । अपने युग की जनता का जीवन कई कवियों की कविता में चित्रित है ।

केंदारनाथ अग्रवाल लिखते है –

" शहर के छोकरे
मैले फटे बदबुदार व़स्त्र पहने
बिना तेल कंधी के
रूखे उलझाये बाल,

नंगे पैर नंगे सिर किचड लपटे तन गलियों में घुमते है।"[4]

वे आगे कहते है –

"अधिकांश जनता का रद्दी की टोकरी का जीवन है ।
संज्ञाहीन अर्थहीन बेकार, चिरे फटे टुकडे सा पडा है ।"

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित कविता के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर है । वे कहते है राख ही जानती है जलने का दर्द, दलित होने की पीडा सिर्फ दलित जानता है।[5] अनेक काव्य संग्रह सदियों का संताप में एक कविता है झाडूवाली । इसमें वे सडक पर झाडू लगाने वाली, कुडा ढोती दलित महिला का चित्रण करते हैं कि सुबह पांच बजे ही रामेसरी हाथ में झाडू थामें लोहे की गाडी को धकेलते हुए सडक पर निकल पडती है । उसकी झाडू से उडती हुई धूल सदियों से निरन्तर उसके फेफडो मे ंजमती जा रही है । और समाज का ध्यान इस ओर गया ही नहीं । अतः वे निष्कर्ष देते है कि –

"जब तक रामेसरी के हाथ में खडांग खांग घिसहती लौह गाडी है
मेरे देश का लोकतंत्र एक गाली है ।"

वे कहते है राख ही जानती है जलने का दर्द, दलित होने की पीडा सिर्फ दलित जानता है।

प्रगतिवादी कवि ने देखा की संसार में नित्य ही लाखों व्यक्ति बिना घर बिना वस्त्र और बिना अन्न के अपमानित नाटकीय जीवन व्यतीत करते है । जीवनभर इन समस्याओं से जूझते रहनेवाला मनूष्य लाचार और विवष बन जाता है आखिर कुत्ते की मौत मर जाता है । अपने ह्दय की मंगल कामना व्यक्त करते हुए नागार्जुन कहते है

"समस्या एक है मरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव सुखी सुन्दर व शोषन मुक्त
कब होंगे ? "[6]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दलित साहित्य वर्ण, जाति व्यवस्था से मुक्ति, वैज्ञानिक सोच व संवेदनशील का साहित्यिक हस्तक्षेप है, जो अन्धविश्वासों, अन्याय एवं शोषन के विरुध्द होकर मनुष्य को पूर्वाग्रहों से मुक्त करता है। वस्तुतः वह प्रतिशोध का साहित्य है। दलित साहित्य न केवल वर्ण व जाति–व्यवस्था से मुक्ति का साहित्य है, अपितु यह सामाजिक समानता, स्वतंत्रता, मानवीयता एवं विश्वबन्धुता को प्रतिप्रस्थापित करने का साहित्य है। इसलिए इसे परम्परागत साहित्यिक मानदण्डो पर नहीं कसा जा सकता।

संदर्भ सूची :

1) प्रसाद शिव नारायन, संत कबीर और उनके अनुयायी, कैलाश पब्लीकेशन औरंगाबाद, प.स. 1994 पृ .45

2) शर्मा शिवकुमार, हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, बींसवां संस्करण पृ. 149

3) खॉ मोईनुद्दीन गुलाम, दिनकर के काव्य में सामाजिक चेतना,सूर्य भारती प्रकाशन दिल्ली., प्र.स. 1995, पृ 143

4) विशंभर 'मानव', नयी कविता नये कवि, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, प्र.स. 1968,पृ. 151

5) वाल्मीकी ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली पृ. 44

6) वहि पृ.183–184